स्कूल में शिल्प*

*कृष्ण कुमार***

स्कूल में हस्तशिल्प महात्मा गाँधी जी द्वारा प्रस्तावित बुनियादी तालिम का केंद्रीय विचार रहा है। जिस पर शिक्षा प्रणाली में कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया। विगत 2005 में एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा राष्ट्रीय पाठ्यचर्या दस्तावेज को तैयार करते समय 'काम और शिक्षा' के फोकस समूह ने इस पर पुनः गहराई से विचार किया तथा ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया में काम के महत्त्व को रेखांकित किया। प्रो. कृष्ण कुमार के इस आलेख में स्कूल में शिल्प विषय पर गहराई से दृष्टि डाली गई है तथा इसे या इससे देश की राष्ट्रीय परम्परा और विरासत से जोड़ने का प्रयास किया है और आज के सूचना प्रौद्योगिकी के समय में शिल्प की आवश्यकता से जुड़े विभिन्न पहलुओं को उजागर किया है।

भारत में ग्रामीण स्कूलों का सुपरिचित दृश्य एक पहेली-सी पेश करता है। रोजमर्रा इस्तेमाल की चीजों में आश्चर्यजनक रूप से विविधापूर्ण एवं समृद्ध सौंदर्यबोध बनाए रख सकने वाले एक समाज में, सीखने के लिए इतनी उदास दिखने वाली जगह कैसे हो सकती है? विशिष्ट शहरी स्कूलों की निम्न और उच्च के. जी. की कक्षाओं में जाने पर जब मैं उनको चिपचिपे प्लास्टिक उपकरणों से भरा पाता हूँ तो समझ नहीं पाता कि क्या प्रतिक्रिया करूँ या स्वयं को कैसे समझाऊँ कि सरकारी अधिकारियों से अधिक कल्पनाशीलता का दावा करने वाले हमारे शिक्षा उद्यमी परंपरागत भारतीय हस्तकला के संसाधनों की दुनिया से इतने अनजान हैं, जहाँ से चीजें लेकर वे छोटे बच्चों के लिए बेहतर शुरुआती कार्यक्रम बना सकते हैं। कुटीर उद्योग वाणिज्य केंद्रों (इंपोरियमों) में जाने पर उनके खिलौना प्रभाग के आकार को देखकर मुझे हमेशा झटका लगता है। तब मैं सोचता हूँ कि हमारी जड़ शिक्षा व्यवस्था को हस्तशिल्पों की तरफ़ खिसकने के लिए कितने और कमलादेवी चट्टोपाध्याय, पुपुल जयकर, लैला तैय्यबजी तथा 'उरमूल', 'सेवा' और 'संधी' की जरूरत होगी।

*'*प्रारम्भ*' शैक्षिक संवाद शिक्षा की त्रैमासिक पत्रिका, वर्ष-5, अंक-3 जुलाई-सितम्बर 2007 से साभार प्रकाशित
***निदेशक*, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली

राजस्थान से आई नवीनतम पाठ्यपुस्तकों के मुख्य पृष्ठ देखकर मुझे आश्चर्य होता है कि रंगों और डिजाइनों की इतनी चौंका देने वाली समझ वाला राज्य इतने नीरस मुख्य पृष्ठ कैसे बना सकता है, उनकी विषयवस्तु निराश होने का एक और पूरी तरह अलग मामला है। आखिरकार अजमेर स्थित बोर्ड कार्यालय 'तिलोनिया' के साथ मिलकर करोड़ों राजस्थानी बच्चों के लिए कम-से-कम बेहतर मुख्य पृष्ठ बनाने का काम क्यों नहीं कर सकता? हमें अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि भारत में बच्चों और उनकी राष्ट्रीय विरासत के बीच, स्कूलों और हस्तशिल्प के बीच तथा शिल्पियों के बीच और शिक्षकों के बीच कोई संपर्क नहीं है।

स्कूली पाठ्यक्रम में हस्तशिल्पों को शामिल करने का विचार न नया है न अपने आप में इतना विवादास्पद, इसके बावजूद अब इसे लागू करना उतना ही कठिन दिखता है जितना 1937 और 1967 के बीच सिद्ध हुआ था। महात्मा गाँधी की उत्साही पैरवी मिलने के बाद, काफी विरोध के बावजूद यह विचार आगे बढ़ा जिसका कारण गाँधी जी की राजनीति और उनका व्यक्तित्व था पर मुख्य कारण युद्धकालीन समय में स्वतंत्रता संग्राम की ऐतिहासिक परिस्थितियाँ थीं। उस समय भी नए विचारों के प्रति भ्रम और द्वेष तथा उनकी गलत व्याख्या की आजादी इतनी ही सामान्य थी जितनी आज है। यहाँ तक कि मुल्कराज आनंद जैसे प्रगतिशील लेखक और विचारक ने गाँधी जी के प्रस्ताव की आलोचना की, शायद इस आधार पर कि इससे बाल श्रम को प्रोत्साहन और वैधता मिलेगी। काँग्रेस-लीग मतभेद, सीखने वाले की मातृभाषा में हस्तशिल्प आधारित समग्र बुनियादी शिक्षा के प्रति शत्रुतापूर्ण माहौल पैदा करने का मुख्य आयाम बन गया।

इन समस्याओं के बावजूद, स्वतंत्रता के बाद भारत के अनेक भागों में इस विचार को लागू किया गया और इसे काफी समर्थन मिला। इसने एक ऐसी पीढ़ी पैदा की जिसने औपनिवेशिक स्कूली शिक्षा के माल से कुछ अलग प्राप्त किया। यदि हम 'कुछ अलग' को व्याख्यायित करने के लिए एक शब्द प्रयोग कर सकें तो वह संसाधनपूर्णता होगा। अपने हाथों से स्वयं चीजें बनाने की इच्छा (यदि दुनियाँ को पुनर्गठित करने की मूलभूत इच्छा को कुचला न जाए तो कुछ भी बनाने की इच्छा, जैसा कि बचपन में महसूस होता है) और यह विश्वास कि कोई सभी प्रकार की चीजें बना सकता है, गाँधी जी अपनी 'नई तालीम' द्वारा बुनियादी स्कूलों में गए थोड़े से लोगों में यही पैदा कर सके।

काफी सफलता और अब अच्छी तरह दस्तावेजों में संकलित विविध कारणों से, कोठारी आयोग की 1964-66 की रिपोर्ट में बुनियादी शिक्षा को ठंडे बस्ते में डाल दिया गया, हालाँकि मुझे पूरा विश्वास है कि ऐसा करना उनका स्पष्ट उद्देश्य नहीं था। भारत उस समय तक विकास के नए चरण में प्रवेश कर चुका था और 1960 दशकांत के माहौल में, बच्चों की हस्तशिल्प केंद्रित शिक्षा को अनावश्यक तथा आदर्शवादी सनक के रुप में देखने की शुरुआत हो चुकी थी। अनेक दूसरे गाँधीवादी विचारों का भी यही हश्र हुआ।

आज स्कूलों में हस्तशिल्प शुरू करने का एक मुख्य कारण, यह व्यापक नजरिया है कि

यह एक बार असफल हो चुका है। विचारों की 'सफलता' या असफलता की अवधारणा सभी स्तरों पर निर्णयकर्ताओं की दुनिया में अंतर्निहित होती है। जब, आई टी उद्योग, शिक्षाशास्त्री बने इंजीनियरों एवं प्रबंधन गुरुओं द्वारा लगातार बहुत से नये चमकदार विचार लगातार दिए जा रहे हों तब उस स्थिति में एक असफल विचार को दूसरा मौका कौन देना चाहेगा। और, उन बहुपक्षीय एजेंसियों को कैसे भूला जा सकता है जो तीसरी दुनिया के उपभोग के लिए काफी नियमित रूप से अवधारणाओं और कार्यक्रमों की खोज करती रहती हैं? भारत के परंपरागत शिल्प आमतौर से प्रचारित 'विकसित' नजरिए में नहीं आते। वे आ भी कैसे सकते हैं? जब प्लास्टिक हमारी जिंदगियों पर एक विशाल कम्बल की तरह फैली है तब संस्कृति और जीवनशैली विविधताओं को छोड़े, हम यह भी याद नहीं कर सकते कि संवेदी अनुभवों की विविधता का क्या अर्थ है। विकसित देश बनने का सपना तेजी से, 28 खुशबुओं पर एक ही जायके वाली आइसक्रीमें तैयार करने जैसा हो रहा है।

दूसरी ओर हस्तशिल्प संभवत: भारत की सांस्कृतिक बहुलता का सर्वाधिक प्रतिनिधि संकेत है। वे काम और मूल्यों को ऐसे संदर्भ के अंतर्गत जोड़ने का प्रतीक है जो प्रत्येक मनुष्य में कलाकार की उपस्थिति स्वीकार करता है। इन दिनों हम शिल्पों के कुछ विशिष्ट कलाकारों की पहचान 'कुशल शिल्पी' के रूप में कर उनका सम्मान करते हैं। ऐसी श्रेणी हमारे प्रतियोगितात्मक स्वभाव के अनुकूल है तथा उसे संतुष्ट करती है। जब हम निर्यात योग्य शिल्पियों और मुक्त रेलवे पास आदि की सहायता वाले शिल्पियों के तौर पर भी भेदभाव करते हैं। हमें याद रखना चाहिए कि परंपरा से शिल्पी ग्रामीण समुदाय के साधारण सदस्य होते थे। वास्तव में एक शिल्प का व्यवहार करना सामान्य जीवन का एक आयाम था और शिल्प उत्पाद का मकसद इसका रोजमर्रा की जिन्दगी में इस्तेमाल होना था।

शिल्प उत्पाद जीवन के सभी क्षेत्रों पर छाए हुए थे और वे उसे शोभा तथा अंहकार-रहित सौंदर्य के हल्के प्रकाश से भर देते थे। फर्श बुहारने के लिए झाड़ू, सोने के लिए चटाई या चारपाई, पानी रखने के लिए बर्तन, खेलने के लिए मिट्टी का घोड़ा या गुड़िया तथा ठंडी हवाओं से बचाने वाली शाल-सभी इस्तेमाल के लिए बनाए जाते थे और अपनी सतत् सौंदर्यबोध शक्ति के साथ ड्रिप (जड़ों को बूँद-बूँद कर खाद-पानी देने वाली) सिंचाई प्रणाली की तरह वे रोजमर्रा जीवन की यात्रा में घुलमिल जाते थे।

''आज स्कूलों में हस्तशिल्प शुरु करने का एक मुख्य कारण, यह व्यापक नजरिया है कि यह एक बार असफल हो चुका है। विचारों की 'सफलता' या असफलता की अवधारणा सभी स्तरों पर निर्णयकर्ताओं की दुनिया में अंतर्निहित होती है। जब, आई टी उद्योग, शिक्षाशास्त्री बने इंजीनियरों एवं प्रबंधन गुरुओं द्वारा लगातार बहुत से नये चमकदार विचार लगातार दिए जा रहे हों तब उस स्थिति में एक असफल विचार को दूसरा मौका कौन देना चाहेगा। और, उन बहुपक्षीय एजेंसियों को कैसे भूला जा सकता है जो तीसरी दुनिया के उपभोग के लिए काफी

नियमित रूप से अवधारणाओं और कार्यक्रमों की खोज करती रहती हैं?''

''सुधारों को लागू करने में देरी की हमें भारी कीमत अदा करनी पड़ी है। युवाओं में आत्मविश्वास और पहलकदमी की भावना पैदा करना तो दूर की बात, हमारी व्यवस्था ने उनको व्यापक समाज से अलग-थलग महसूस करना तथा जीवन के किसी भी क्षेत्र में व्यक्तिगत निर्णय लागू करने में डरना सिखाया है। न यह ज्ञानेन्द्रियों को प्रशिक्षित करती है न संवेदनशीलता को पोषित करती है। करोड़ों लोगों के लिए, व्यवस्था उसी तरह काम करती जा रही है जिस तरह यह उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम समय में करती थी।''

रोजमर्रा जिन्दगी में गहराई के इस स्तर पर, शिल्प भारत में व्यापक और चौंकाने वाली विविधता के संकेत की तरह काम करते हैं। थोड़ा व्यंग्यात्मक बात है कि पाकिस्तान का एक संग्रहालय देखते समय मैं इस समझ पर पहुँचा। हमारे यहाँ इसके जैसा कुछ नहीं है इसलिए इसके बारे में कुछ पंक्तियां ज़रुरी हैं। मैं इस्लामाबाद के बाहरी इलाके में स्थित 'लोक विरसा' का जिक्र कर रहा हूँ। देश का भीतरी चेहरा प्रस्तुत करने वाली यह पाकिस्तान के लोकवार्ता विभाग की शानदार रचना है। यह एक ऐसा चेहरा है जिसने राष्ट्रीय जीवन द्वारा सामूहिक रुप से अनुभव की जाने वाली तमाम सामूहिक मुसीबतों के बावजूद अपनी चमक और विविधता बनाए रखी है।

'लोक विरसा' आधुनिक संग्रहालयीन प्रयास और उपकरणों तथा पाकिस्तान में प्रयोग किए जा रहे शिल्पों का शानदार नमूना है। इसमें प्रदर्शित चीजें गहराई से, शिल्प और जहाँ पर फला-फूला वहाँ के प्राकृतिक भूगोल से इसके संबंध, सामुदायिक जीवन में इसका स्थान और स्थानीय संस्कृति, उसके विश्वासों तथा जैंडर संबंधों को बदलने में उसकी भूमिका को संप्रेषित करती हैं। 'लोक विरसा' स्पष्ट रुप से, शिल्पों में जड़ें जमाए सभ्यता में महिलाओं के योगदान का आनंद मनाती है। भारत से गए एक दक्षिण एशियाई अतिथि के तौर पर मैंने पाया कि 'लोक विरसा' इस चीज की जीवंत यादगार है कि शिल्प पूरे क्षेत्र में विश्वास, समृद्धि और शांति बनाए रखने में क्या कर सकते हैं।

शिल्पों को शिक्षा से जोड़ने का प्रयास एक बार फिर करने का विचार अच्छा है, पर पिछली गलतियों से बचने के लिए उपयुक्त पश्च दृष्टि के साथ, क्योंकि दोनों क्षेत्र आज एक ही प्रकार के संकट से ग्रस्त हैं। शिक्षा एक ऐसे क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करती है जहाँ समाज स्वयं को पुनर्जिवित कर सकता है, यदि वह इस स्थान का न्यायोचित उपयोग करे। संबंध जोड़ने के दौरान, शिक्षा का हृदय अभिव्यक्ति है। यह एक सुस्थापित तथ्य है कि भारत की शिक्षा व्यवस्था मृतप्राय बनी हुई थी, आंशिक रुप से प्रशासन और वित्तीय व्यवस्थाओं की औपनिवेशिक विरासत के कारण, पर मुख्यत: इस कारण की पुरानी सांस्कृतिक विरासतें साक्षरता और बौद्धिक शिक्षण तथा शारीरिक कार्य और कौशल में विभाजन करती थी। प्राथमिक शिक्षा को सर्वव्यापी बनाने और व्यवस्था को सुधारने में हमारी राष्ट्रीय विफलता के कारण इसे (10 मिलियन कारीगरों सहित) तथाकथित कमजोर तबकों के सामाजिक बहिष्करण का औजार बनने से रोका नहीं जा सका। इन कारणों का जितना

संबंध पाठ्यक्रम के सांस्कृतिक चरित्र से है उतना ही हमारे कठोर प्रशासनिक व्यवहारों से भी।

सुधारों को लागू करने में देरी की हमें भारी कीमत अदा करनी पड़ी है। युवाओं में आत्मविश्वास और पहलकदमी की भावना पैदा करना तो दूर की बात, हमारी व्यवस्था ने उनको व्यापक समाज से अलग-थलग महसूस करना तथा जीवन के किसी भी क्षेत्र में व्यक्तिगत निर्णय लागू करने में डरना सिखाया है। न यह ज्ञानेन्द्रियों को प्रशिक्षित करती है न संवेदनशीलता को पोषित करती है। करोड़ों लोगों के लिए, व्यवस्था उसी तरह काम करती जा रही है जिस तरह यह उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम समय में करती थी। यह ऐसे कागज़ का टुकड़ा प्राप्त करने का माध्यम है जो लगातार घटती कार्यकालीन नौकरियों का वादा करता है। स्वतंत्रता के बाद नीतिगत निर्णयों के इतिहास में बहुत जोरशोर से काम और शिक्षा को जोड़ने की बात की गई है, पर हमारी संस्कृति के सबसे पुराने नकारात्मक रुप-मानसिक और शारीरिक काम के बीच खाई कम करने में बहुत कम प्रगति हुई है। नए प्रकार की बुनियादी शिक्षा का गाँधी जी का प्रस्ताव वास्तव में इसी खाई को कम करने को लक्षित था पर चीजें उस तरह नहीं चलीं जैसा उन्होंने सोचा था।

कोई कारण नहीं कि हम स्कूली पाठ्यक्रम में शिल्प शिक्षा शामिल करने के गाँधी जी के विचार पर फिर नहीं लौट सकते, एक पाठ्येतर गतिविधि के तौर पर नहीं बल्कि एक अनुभव के तौर पर जो बाकी पाठ्यक्रम को व्यापक अर्थ तथा गहराई देगा। यदि हम इस मामले पर फिर से सोचें तथा इस पर कल्पनाशील एवं पश्च दृष्टि के साथ काम करें तो हम शिक्षा व्यवस्था को उस तरह सुधार सकते हैं जिस तरह केवल शिल्प हमें सुधारने में मदद कर सकते हैं और इस प्रक्रिया में हम शिल्पों की अपनी विरासत को प्रमुख संस्थागत स्थान भी दे सकते हैं जहाँ नई डिजाइनें, तकनीकें, संबंध और नजरिए फल-फूल सकते हैं। जातीय आधार पर विभाजित समाज में दूसरी अन्य बहुत-सी चीजों की तरह अलगाव और ठहराव से ज्ञान तथा शिल्प के कौशल आयामों को भी नुकसान पहुचां। औपचारिक शिक्षा को शिल्पों के साथ जोड़ने पर दोनों में रचनात्मकता को बढ़ावा मिल सकता है।

इस प्रस्तावित संबंध पर आगे बात करने से पहले, मैं दो पुस्तकों-उर्सुला ह्यूज़ की 'द मेकिंग ऑफ अ साइबरटेरियट' तथा उर्सुला फ्रेंकलिन की 'द रियल वर्ल्ड आफ़ टेक्नालाजी' की सहायता से संक्षेप में आर्थिक दुनिया में शिल्पों के संकट की जाँच करना चाहूँगा।

उर्सुला ह्यूज़ एक श्रम अर्थशास्त्री हैं और नारीवाद तथा मार्क्सवाद के प्रति प्रतिबद्धता के कारण उनको लुड्डाइट(कारीगरों के वर्ग का जिसने मशीनों को नष्ट करने के लिए दंगे किए) नहीं कहा जा सकता। लंदन में कामगार अधिकारों के लिए संघर्ष करने के लंबे कैरियर में छपी केवल एक किताब में उनका तर्क है कि तकनीक और सामाजिक संबंधों के इतिहास में कुछ विशेष हो रहा है, और हम एक नये चरण की शुरुआत से गुजर रहे हैं जो विचारधारात्मक थकान से मुकाबला करने के लिए एक नये स्तर की मानवीय सरलता की माँग करता है। उनका तर्क है कि द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद मालिक-मजदूर

संबंधों में एक संतुलन स्थापित हो गया था। तकनीक के इतिहास में इस तरह के अनेक महत्वपूर्ण मोड़ आए हैं, प्रत्येक स्तर स्वयं तकनीक में मानव कौशलों को शामिल कर लेने और कौशलों के मालिकों को व्यर्थ बना देने के लिए एक नए स्तर के पूँजी निवेश का प्रतिनिधित्व करता है, पर वर्तमान स्तर अधिक गहरा है। ह्यूज हमें दिखाती हैं कि विज्ञान और तकनीक की दिशा इस चीज पर निर्भर करती है कि मुनाफे और निवेश हमें कहाँ ले जाते हैं, दूसरे शब्दों में इसका समर्थन करने वाली तकनीक और विज्ञान की प्रगति को मूल्यों और इरादों से निबटना होगा।

ह्यूज़ बहुत से उदाहरण देती हैं। इनमें से एक 'साइबरटेरियट' का उभरना है जिसमें कार्यालयीन कर्मचारी–पश्चिमी दुनिया में अधिकतर महिलाओं– के सभी कौशल शामिल होते हैं और जिसने युद्ध के बाद वाले दशकों में एक सामूहिक आत्मछवि विकसित कर ली है। अब इसके कोई मायने नहीं है कि आप एक पत्र कि कितनी बढ़िया ड़िजाइन बना कर इसे फार्मेट कर सकते हैं, या कितनी कुशलता से आप पहले ड्राप्ट में की गई गलतियाँ ठीक कर सकते हैं। सेक्रैटरी के काम में शिल्प के तत्व समाप्त हो गए हैं। डेस्कटाप (कंप्यूटर) ने शताब्दियों की शिल्पकारिता को अपने भीतर समाहित कर लिया है। इसे प्रयोग करने वाले को अब मेन्यू में पेश अनेक संकेतों–'फार्मेट', 'व्यू' या केवल 'हेल्प'– में से जरूरी संकेत पर बस क्लिक करना होता है। ह्यूज उन परिवर्तनों को सामने लाती हैं कि यह कैसे आर्थिक और सांस्कृतिक संबंधों को बदलेगा, खासकर कार्य आधारित सेक्युलर पहचानों को। अनेक ऐसे उदाहरण देने की प्रक्रिया में वे हमें शिल्पों को परिभाषित करने का एक संकेत देती है। शिल्प ऐसी चीज़ है जिसके लिए सावधानी तथा व्यक्तिगत रूप से ध्यान देने की ज़रूरत होती है और जो यह संप्रेषित करने के माध्यम से पहचान बनाता है, 'मैं इसे अच्छी तरह कर सकता हूँ, मैं यह हूँ।'

''शिल्पों के सामने आने वाला संकट वास्तव में पहचानों के बड़े द्वंद्व की अभिव्यक्ति है जिस पर काफी स्पष्ट रूप से समाजविज्ञानियों यहाँ तक कि अर्थशास्त्रियों ने गौर किया है। उदाहरण के लिए सिलाई को लें। जो चीज़ इसे शिल्प बनाती है वह उस व्यक्ति से संबंधित है जो काटने, सिलने और अंत में महिन काम में ध्यान देता और चिंता करता है। जब व्यक्ति यानी सिलने वाला दर्जी केवल शरीर के आकार तक सीमित रह जाता है तो शिल्प साफ्टवेयर में गायब हो सकता है जिससे केवल वस्त्र फैक्ट्री बचती है जहाँ कामगार को कोई निर्णय नहीं लागू करना होता है, उसे बस सही समय पर सही बटन दबाने होते हैं।''

''अपनी किताब, 'द रियल वर्ल्ड ऑफ टेक्नालाजी' में उर्सुला फ्रैकलिन समग्र और निर्देशात्मक तकनीकों के बीच अंतर करती हैं। अंतर का आधार यह है कि क्या तकनीक व्यक्तियों को उसे निर्यंत्रित करने के अधिकार की अनुमति देती है। जहाँ निर्देशात्मक तकनीकें सक्षम हैं। और भारी सँख्या में लोगों को एक समूह के तौर पर काम करने की अनुमति देती हैं, वे काम के सभी आयामों पर नियंत्रण को किसी ऊपर के आदमी को स्थानान्तरित कर

देती हैं। इसके अलावा हर व्यक्ति केवल वही करना जानता है जिसे करने की उसे जिम्मेदारी दी जाती है। समग्र तकनीक में लोग अपने शुरू से अन्त तक अपने काम की प्रक्रिया पर नियंत्रण करते हैं। एक उत्पाद पर काम करते समय निर्णय शिल्पी का होता है, ऊपर बैठे किसी उच्च अधिकारी का नहीं।''

शिल्पियों के सामने आने वाला संकट वास्तव में पहचानों के बड़े द्वंद्व की अभिव्यक्ति है जिस पर काफी स्पष्ट रूप से समाजविज्ञानियों– यहाँ तक कि अर्थशास्त्रियों ने भी गौर किया है। उदाहरण के लिए सिलाई को लें। जो चीज़ इसे शिल्प बनाती है वह उस एक व्यक्ति से संबंध हैं जो कटिंग, सिलने और अन्त में महीन काम में ध्यान देता और चिंता करता है। जब व्यक्ति यानी सिलने वाला दर्जी केवल शरीर के आकार तक सीमित रह जाता है तो शिल्प साफ्टवेयर में गायब हो सकता है जिससे केवल वस्त्र फैक्ट्री बचती है जहाँ कामगार को कोई निणर्य नहीं लागू करना होता है, उसे बस सही समय बटन दबाने होते हैं।

परंपरागत शिल्पों को स्कूल पाठ्यक्रम में शामिल करने की पैरवी करने वाले हमारे जैसे लोग निश्चित रूप से अपने चारों ओर की आर्थिक व तकनीकी स्थिति तथा आने वाले आर्थिक परिवर्तनों से बहुत निराश होते हैं। ऐसे परिवर्तन शिल्पों के इतिहास में पहले भी हुए हैं, पर इस बार संकट के तेजी से फैलने की संभावना है। ऐसे देश हैं जो नई वास्तविकताओं को समझकर तथा उनके भीतर काम कर अपने शिल्पों को बचाने में सफल हुए हैं। दक्षिण अफ्रीका ऐसा ही एक देश है जहाँ शिल्प उत्पादों का संगठन और बिक्री अब व्यापार और पयर्टन से मजबूती से जुड़ी है। भारत में भी यह प्रयास किया जा रहा है, हालाँकि हमारे काम का दायरा काफी सीमित और हमारी प्रगति धीमी है। मुझे विश्वास हैं कि कुछ समय में काफी सँख्या में बेहतर प्रबंधन विशेषज्ञों को शामिल कर हम अपने शिल्पों के लिए काफी बड़े बाज़ार बनाने में सफल होंगे और शायद काफी सँख्या में शिल्पियों और महिलाओं के लिए बेहतर रोजगार मिलने की संभावना होगी– कम से कम उससे बेहतर आजीविका जिसे वे आज हासिल कर पा रहें हैं।

शिल्प उत्पादों के लिए बड़ी सँख्या में ग्राहक तलाश करना वास्तव में एक बड़ी चुनौती है पर शिल्पों का भविष्य बहुत से फैसले और पहल कदमियों पर निर्भर होगा। संभवत: इनमें सबसे महत्वपूर्ण भारत के लोकतंत्र में शिल्पियों के सामाजिक स्तर के बारे में होगा। असंदिग्ध रूप से शिक्षा एक महत्वपूर्ण आयाम है जो शिल्पियों और उनके द्वारा प्रयोग किए जाने वाले शिल्पों का भविष्य तय करेगा। न केवल उनके बच्चों की शिक्षा बल्कि ज्ञान और भारत के शिल्पों में अंतर्निहित कौशल के बीच संबंधों की अनुमति देने वाली एक व्यवस्था के तौर पर शिक्षा, यह तय करेगी कि हमारे शिल्प नव-उदारवादी सिद्धांतों के हमले में जीवित रहने और जीवन सुनिश्चित करने के बाद हमारी सभ्यता का भविष्य बनाने में कितना सफल होंगे। वर्तमान समय में आत्मसंतुष्ट बने रहने का कोई स्थान नहीं है।

अपनी किताब 'द रियल वर्ल्ड ऑफ टेक्नालाजी' में उर्सुला फ्रैंकलिन समग्र व

निदेशात्मक तकनीकों के बीच अंतर करती हैं। अंतर का आधार यह है कि क्या तकनीक व्यक्तियों को उसे नियंत्रित करने के अधिकार की अनुमति देती है। जहाँ निर्देशात्मक तकनीकें सक्षम हैं और भारी सँख्या में लोगों को एक समूह के तौर पर काम करने की अनुमति देती हैं, वे काम के सभी आयामों पर नियंत्रण को किसी ऊपर के आदमी को स्थानान्तरित कर देती हैं। इसके अलावा हर व्यक्ति केवल वही करना जानता है जिसे करने की उसे जिम्मेदारी दी जाती है। समय तकनीक में लोग अपने शुरू से अंत तक अपने काम की प्रक्रिया पर नियंत्रण करते हैं। एक उत्पाद पर काम करते समय निर्णय शिल्पी का होता है, ऊपर बैठे किसी उच्च अधिकारी का नहीं।

कनाडा में चोटी के प्रायोगिक भौतिकविज्ञानियों में शामिल फ्रैंकलिन, निर्देशात्मतक तकनीक के सबसे शुरूआती उदाहरण के तौर पर प्राचीन चीन में ढाले जाने वाले विशाल बर्तनों का जिक्र करती हैं। इस काम को अलग-अलग लागू किए जाने वाले लक्ष्यों की एक श्रृंखला के तौर पर संगठित किया जाता था जिसमें भारी सँख्या में लोग शामिल होते थे। वे सभी एक प्रबंधक या मालिक के पर्यवेक्षण के अंतर्गत सटीक मानकों वाला काम करते थे। समग्र तकनीकों का उदाहरण वे हस्तशिल्पों के माध्यम से देती हैं जिनमें अवधारणा बनाने, उस पर काम करने तथा उसे पूरा करने के लिए एक व्यक्तिगत रचनाकार की ज़रूरत होती है। फ्रैंकलिन कहती हैं कि दोनों प्रकार की तकनीकों में, 'बिल्कुल अलग विशेषताएँ और श्रम विभाजन शामिल होते हैं और आखिरकार उनके बिल्कुल भिन्न सामाजिक और राजनीतिक प्रभाव होते हैं (पृष्ठ 10)।

निर्देशात्मक तकनीकें, आज्ञा पालन की संस्कृति विकसित करती हैं। फ्रैंकलिन का तर्क है कि सामाजिक और राजनीतिक विचारों को शक्ल देकर तथा नौकरशाही के सर्वाधिक आरम्भिक ज्ञात उदाहरणों के साथ ऐसा प्राचीन चीन में हुआ। समग्र तकनीक भारी सँख्या में शिल्पों में प्रयोग की जाती है और इसने यूरोप के सामाजिक एवं राजीतिक संस्थानों को शक्ल दी। फ्रैंकलिन बताती हैं कि औद्योगिक क्रांति के समय निर्देशात्मक तकनीकें 'समुद्र पर गिरे तेल की तरह फैलीं', पर उनका तर्क है कि पसंद का तत्व लगातार प्रासंगिक बना रहा। हालांकि समग्र तकनीकों का जीवित बने रहना अधिक अनिश्चित हो गया है, पर समझ-बूझ और पसंद के आधार पर उन क्षेत्रों की फौरन पहचान करने के कारण मौजूद हैं (जैसे पर्यावरण संसाधनों की कमी और विभिन्न प्रकार के राजनीतिक संकट जिनको अत्यधिक औद्योगिक तथा कम औद्योगिक देश, दोनों अनुभव कर रहे हैं) जहाँ दोनों प्रकार की तकनीकें लागू करने की ज़रूरत है।

''हस्तशिल्पों की लंबी परंपरा में शताब्दियों से उद्योगों की आधुनिकीकरण प्रक्रिया का अर्थ खासकर उन सामाजिक समूहों के लिए काफी परेशानी और भय पैदा करने वाला रहा है जो किसी हस्तशिल्प के विशेषज्ञ और अपने जीवन के लिए उस पर निर्भर थे। भारत में 'हस्तशिल्पों की लंबी परंपरा में शताब्दियों से, उद्योगों की आधुनिकीकरण प्रक्रिया का अर्थ खासकर उन सामाजिक समूहों के लिए काफी

परेशानी और भय पैदा करने वाला रहा है जो किसी हस्तशिल्प के विशेषज्ञ और अपने जीवन के लिए उस पर निर्भर थे। भारत में इस प्रकार की परेशानी को हस्तशिल्प के संरक्षकों द्वारा लगभग लगातार अभिव्यक्त किया गया उनमें से अनेक ने पूरा कैरियर अपने शिल्प को राज्य की आर्थिक विकास योजनाओं में स्थान सुनिश्चित कराने के लिए कठोर संघर्ष करने में लगा दिया। यह संघर्ष जारी रहना चाहिए, साथ ही शिल्पों को बनाए रखने और उनके विकास के लिए स्कूली शिक्षा व्यवस्था के भीतर स्थान का दावा किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2005 (एनसीएफ) यही करना चाहती है।''

भारत में इस प्रकार की परेशानी को हस्तशिल्प के संरक्षकों द्वारा लगभग लगातार अभिव्यक्त किया गया, उनमें से अनेक ने पूरा कैरियर अपने शिल्प को राज्य की आर्थिक विकास योजनाओं में स्थान सुनिश्चित कराने के लिए कठोर संघर्ष करने में लगा दिया। यह संघर्ष जारी रहना चाहिए, साथ ही शिल्पों को बचाए रखने और उनके विकास के लिए स्कूली शिक्षा व्यवस्था के भीतर स्थान का दावा किया जाना चाहिए। *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 (एनसीएफ)* यही करना चाहती है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा के अंतर्गत परंपरागत शिल्पों और लक्षित समूह की रिपोर्ट ने संकेत किया है कि शताब्दियों से शिल्प ने, भारतीय दर्शन, तत्ववाद, कला और सामाजिक जीवन के लिए मुहावरों और विचारों के संसाधन की तरह सेवा की है। रिपोर्ट कहती है, 'शिल्प-सिद्धांत और व्यवहार दोनों में स्कूल और समाज के सभी स्तरों, स्थानों और क्षेत्रों में सभी बच्चों के भावनात्मक, आर्थिक एवं बौद्धिक सशक्तीकरण का शक्तिशाली औजार हो सकते हैं।' यह दावा किसी स्कूल प्रधानाचार्य या राज्य शिक्षा अधिकारी को स्कूलों में शिल्प को मौका देने के लिए काफी हो सकता है।

''अपने पाठ्यक्रम में शिल्प शुरू करने वाले स्कूलों को बच्चों और शिक्षकों के साथ काम करने के लिए स्थानीय रूप से उपलब्ध शिल्पियों को अपने साथ जोड़ना चाहिए। भारत में शायद ही कोई ऐसा क्षेत्र हो जहाँ की अपनी शिल्प परंपराएँ और तमाम तनावों के बावजूद इनका व्यवहार करने वाले लोग न हों। परंपरागत शिल्पों पर राष्ट्रीय लक्ष्य समूह ने भावुक अपील की है कि स्कूल शिक्षकों और बच्चों के साथ काम करने के लिए आमंत्रित किए जाने पर इन स्थानीय शिल्पियों को सम्मानजनक मानदेय दिया जाए। स्कूली जीवन में काम से संबंधित मूल्यों और नैतिकता को मजबूती से अंतर्निहित करने के लिए शिल्प शिक्षण को पाठ्येत्तर योग मानने के बजाय उसे परंपरागत स्कूल विषयों के साथ जोड़ा जाना चाहिए।''

स्कूल पाठ्यक्रम में शिल्पों को शामिल करने में, शिक्षा व्यवस्था में लंबे समय से इच्छित अनेक परिवर्तनों को शुरू करने की क्षमता है। शिल्प पाठ्यक्रम की पूरी क्षमता को प्राप्त करने के लिए तैयारी के अनेक कदम उठाए जाने चाहिए। हमें यह सोचना होगा कि स्कूल में इसे पढ़ने की

इच्छा करने वाले छात्रों को जरूरी सामग्री और औजार कैसे उपलब्ध कराए जाएँ। यदि हम इस काम को खरीद और बिक्री की तरह समझेंगे तो हो सकता है हम 1980 के दशकांत में आपरेशन ब्लैकबोर्ड में की गई गलतियों को दुहराने लगें। इसके विकल्प हैं।

प्राइवेट स्कूलों (जिनको भारत में 'पब्लिक' स्कूल कहते हैं) के लिए अपने फैसले लेने में कोई समस्या नहीं है कि वे ऐसे औजारों जैसे करघे, कपड़े, रंग और तागे, लकड़ी, मिट्टी या भट्टी को कहाँ से प्राप्त करेंगे। प्राइवेट स्कूलों में असली चुनौती प्रबंधन और अक्सर प्रधानाचार्य के दिमाग को तड़क-भड़क, चमक-दमक और एयरकंडीशनिंग से बदलने और आगे की दिशा में चलाने की होती है। अपनी बहुत व्यस्त समय सारिणी में शिल्पों के लिए जगह बनाने के प्रयास में प्राइवेट स्कूलों को शहरी संपन्न माता-पिता की जीवन शैली और माँगों का ध्यान रखना होगा। यह भय कि अगर उनके लड़के अपनी अँग्रेजी पाठ्यपुस्तक में गाल्सवर्दी की 'क्वालिटी' पढ़ने के बाद जूता बनाना सीखने में समय खर्च करेंगे तो वे आईआईटी प्रवेश परीक्षा में असफल हो जाएंगे, काफी प्रधानाचार्यों और प्रबंधक समितियों के विभागाध्यक्षों को इससे विरत करेगा।

इससे कहीं बड़ी व्यवस्थागत चुनौती सरकारी स्कूल व्यवस्था के सामने है जिसमें केंद्रीय एवं नवोदय विद्यालय के रूप में उनकी अधिक विशेषाधिकार प्राप्त उप-व्यवस्थाएँ शामिल हैं। सरकारी स्कूलों को अलग-अलग संस्थानों की तरह नहीं समझा जाता है। सभी चीजें ऊपर के निर्देश पर होती हैं और यह सभी स्कूलों पर लागू होता है। सरकारी स्कूलों से स्वायत्त संस्थान की तरह व्यवहार न किए जाने के कारण, जहाँ प्रधानाचार्य और शिक्षकों को पसंद के एक ढाँचे के अंतर्गत कुछ मामलों पर पेशेवर निर्णय लेने की स्वतंत्रता हो, सुधार के बहुत से महान विचार जरा भी असर छोड़ने में विफल हो गए हैं।

यदि शिल्पों को शामिल करने का निर्णय एक प्रबुद्ध राज्य निदेशक द्वारा लिया गया, तो यह प्रयासों की शुरूआत से पहले ही उसके अन्त की गारंटी होगा। पसंदें अनुपयुक्त होंगी, विभिन्न प्रक्रियाओं के माध्यम से सप्लाई किए गए उपकरणों और सामग्री में भ्रष्टाचार की संभावना होगी और यह सामग्री बक्सों में बंद रह जाएगी। इसके बजाय, यदि केवल एक रूपरेखा का प्रस्ताव हो तथा अलग-अलग स्कूलों को स्वयं शुरू किए जाने वाले शिल्प तथा प्रासंगिक सामग्री व औजार प्राप्त करने का स्रोत पसंद करने का अधिकार हो तो तार्किक रूप से प्रधानाचार्य से परियोजना के परिणाम के लिए ज़िम्मेदारी महसूस करने की आशा की जा सकती है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा ने इसका सुझाव व्यापक परिणामों वाले एक सामान्य सुधार के रूप में दिया है। संस्थागत स्वायत्तता के विचार को आगे बढ़ाने में शिल्प एक अच्छा शुरूआती बिंदु हो सकते हैं।

अपने पाठ्यक्रम में शिल्प शुरू करने वाले स्कूलों को बच्चों और शिक्षकों के साथ काम करने के लिए स्थानीय रूप से उपलब्ध शिल्पियों को अपने साथ जोड़ना चाहिए। भारत में शायद ही कोई ऐसा क्षेत्र हो जहाँ की अपनी शिल्प परंपराएँ और तमाम तनावों के बावजूद इनका व्यवहार करने वाले लोग न हों। परंपरागत शिल्पों पर

राष्ट्रीय लक्ष्य समूह ने भावुक अपील की है कि स्कूल शिक्षकों और बच्चों के साथ काम करने के लिए आमंत्रित किये जाने पर इन स्थानीय शिल्पियों को सम्मानजनक मानदेय दिया जाए। स्कूली जीवन में काम से संबंधित मूल्यों और नैतिकता को मजबूती से अंतर्निहित करने के लिए शिल्प शिक्षण को पाठ्येत्तर योग मानने के बजाय उसे परंपरागत स्कूल विषयों के साथ जोड़ा जाना चाहिए। जो स्कूल शिल्प शिक्षण को शामिल करने का निर्णय लें उन्हें चुने हुए शिल्प और दूसरे विषयों के बीच विभिन्न प्रकार के संबंधों की तलाश करनी चाहिए। उदाहरण के लिए गणित को सामग्री और डिज़ाइन आयामों से जोड़ा जा सकता है जबकि विज्ञान को पॉटरी जैसे शिल्प की प्रक्रियाओं का अध्ययन करते समय पढ़ाया जा सकता है। विशिष्ट शिल्प से संबंधित शब्दावली का प्रयोग और विस्तार, प्रासंगिक साहित्यिक सामग्री (जैसे फणीश्वरनाथ रेणु की कहानी ठेस या गाल्सवर्दी की कहानी 'क्वालिटी', जिसका जिक्र पहले किया जा चुका है।) के साथ भाषा और साहित्य की कक्षा में किया जा सकता है। शिल्प के सामाजिक भूगोल (यानी इसका व्यवहार करने वाले कौन हैं, उनके उत्पादों को कहाँ भेजा जाता है और इस्तेमाल के लिए आदि) को समाजविज्ञान के पाठ्यक्रम से जोड़ा जा सकता है।

स्कूल में शिल्प सिखाने को कला शिक्षण के एक आयाम की तरह भी देखा जाना चाहिए। वर्तमान कला पाठ्यक्रम शास्त्रीय परंपराओं पर केंद्रित होते हैं तथा लोक परंपराओं की अनदेखी करते हैं जबकि आमतौर से शिल्प इन्हीं में अंतर्निहित होते हैं। लोक परंपराओं और शैलियों को शामिल करने के लिए सभी प्रमुख क्षेत्रों जैसे संगीत, नृत्य, थियेटर, विजुअल आर्ट्स आदिम कला पाठ्यक्रम के पुनरीक्षण की फौरी आवश्यकता है। ऐसी पुनर्परिभाषा के संदर्भ में शिल्प कार्यक्रमों को व्यापक कला शिक्षण ढांचे के अंतर्गत समाहित किया जा सकता है। यह उन अन्य संभावनाओं को अनदेखा करने की पैरोकारी नहीं है जिनको शिल्प कार्यक्रम प्रस्तुत कर सकता है जैसे व्यावसायिक प्रशिक्षण जो उत्पादन कौशलों और नज़रियों की ओर ले जाता है। ये चीजें शिल्प शिक्षा के क्षेत्र में भी शामिल होती हैं पर उनको मुख्य धारा या शिल्प की पैरवी का आधार बनाने की आवश्यकता नहीं है। आंशिक रूप से इस कारण कि गाँधीवादी चरण में हमने इस विचार का अनुभव बिना अधिक सफलता के किया है, और इस कारण भी कि शिल्पों के सामने उस संकट को अचानक दूर होने के कोई तात्कालिक कारण नहीं दिखाई दे रहे हैं जिसका सामना वे आर्थिक रूप से जीवित बचे रहने के संदर्भ में कर रहे हैं।

''जो स्कूल, पाठ्यक्रम में शिल्प परियोजना का विकल्प देते हैं उनको मूल्य शिक्षा के बारे में अपनी परेशानियों को भुला देना चाहिये। 'मूल्य शिक्षा' शब्द उस सीमा की याद हैं जिसके बारे में शिक्षा से हमारी उम्मीदें घट गई हैं। हमारे सामने शिक्षा में मूल्य डालने के अनेक कार्यक्रम आते हैं, जैसे स्कूलों में जो चल रहा है उसमें मुट्ठीभर मूल्य डाले जा सकते हैं। शिल्प यह भूमिका इस तरह से अदा करेंगे जिसे बहुत से लोग आसानी से पहचान नहीं सकेंगे क्योंकि

शिल्प सीखने के मूल्य आयाम बहुत सूक्ष्म होते हैं।''

जो स्कूल, पाठ्यक्रम में शिल्प परियोजना का विकल्प देते हैं उनको मूल्य शिक्षा के बारे में अपनी परेशानियों को भुला देना चाहिए। 'मूल्य शिक्षा' शब्द उस सीमा की याद है जिसके बारे में शिक्षा से हमारी उम्मीदें घट गई हैं। हमारे सामने शिक्षा में मूल्य डालने के अनेक कार्यक्रम आते हैं, जैसे स्कूलों में जो चल रहा है उसमें मुट्ठी भर मूल्य डाले जा सकते हैं। शिल्प यह भूमिका इस तरह से अदा करेंगे जिसे बहुत से लोग आसानी से पहचान नहीं सकेंगे क्योंकि शिल्प सीखने के मूल्य आयाम बहुत सूक्ष्म होते हैं।

शिल्प सीखते समय बच्चे एक प्रक्रिया में भाग लेते हैं जो प्रत्येक सीखने वाले को एक सुखद पर कठोर मेहनत की माँग करने वाली परम्परा में प्रयोग के समुचित अवसर देती है। सही होने के मानक स्वयं अपने काम से पैदा होते हैं। यदि शिक्षक उत्पीड़क न हो और प्रधानाचार्य वार्षिक दिवस कार्यक्रम में वीआईपी मुख्य अतिथि को आश्चर्यचकित करने के लिए छात्रों के सर्वोत्तम उत्पाद प्रदर्शित करने की योजना न बना रहे हों तो फिर से करने और खुद को ठीक करने की क्षमता स्वाभाविक रूप से पोषित होती है। दूसरों के साथ संबंधों के संदर्भ में उच्चस्तरीय नैतिक मूल्य पैदा होते हैं, जिनमें प्रकृति के साथ संबंध भी शामिल हैं। स्वर्गीय डेविड हांसबरो ने समझाया है कि काम करने वाली सामग्री हमें अपने साथ व्यवहार करना कैसे सिखाती है। यदि हम लकड़ी के एक खरादने वाले टुकड़े के साथ खराब व्यवहार करते हैं तो वह टूट जाता है।

''जब स्कूल और शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान शिल्पियों के साथ काम करना शुरू करते हैं तो शिल्प सीखने के बहुत से अन्य आयाम उभरेंगे जो शिक्षा में नैतिकता के लिए प्रासंगिक होंगे। समय और कठोरता का अलग अनुभव, उत्पाद की व्यक्तिगत देखभाल और विस्तार की समझ; किसी शिल्प अनुभव के सामान्य आयाम हैं। चाहे आप एक रूमाल पर कढ़ाई कर रहे हों या लकड़ी के एक टुकड़े पर नक्काशी, आपको अपनी खोज, आनन्द और आराम की एक लय का अहसास होगा।''

गाँधी जी के जीवन पर अपनी किताब में मार्जोरी साइक्स बुनियादी शिक्षा कार्यक्रम के हिस्से के तौर पर कतई सीखने वाले बच्चों और शिक्षकों से अपनी बातचीत को याद करती है। शिक्षकों ने उन्हें बताया कि वे कपास की बोडियों को केवल तभी तोड़ते हैं जब वे पूरी तरह पक जाती हैं, क्योंकि उनके लिए 'बस एक हल्का-सा स्पर्श काफी है, वे आसानी से टूट जाती हैं। यदि ऐसा नहीं होता तो वे अभी तोड़ने के लिए तैयार नहीं है। हमें कुछ दिन और इंतजार करना चाहिए। हमें अधीर या लालची नहीं होना चाहिए। साइक्स की टिप्पणी है,

''यह भी शिक्षा थी, इस बात की शिक्षा कि दूसरी जीवित चीजों, पौधों, जानवरों के साथ उनके अपने प्राकृतिक जीवन चक्र में सम्मान से कैसे व्यवहार किया जाए। यह अहिंसा के एक आयाम की शिक्षा है'' (पृष्ट 54)।

जब स्कूल और शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान शिल्पियों के साथ काम करना शुरू करते हैं तो शिल्प सीखने के बहुत से अन्य आयाम उभरेंगे

जो शिक्षा में नैतिकता के लिए प्रासंगिक होंगे। समय और कठोरता का अलग अनुभव, उत्पाद की व्यक्तिगत देखभाल और विस्तार की समझ, किसी शिल्प अनुभव के सामान्य आयाम हैं। चाहे आप एक रूमाल पर कढ़ाई कर रहे हों या लकड़ी के एक टुकड़े पर नक्काशी, आपको अपनी खोज, आनंद और आराम की एक लय का अहसास होगा। यदि आप एक शिल्प का अभ्यास एक ऐसे माहौल में करते हैं जो व्यक्तिगत सम्मान और न्याय की गारंटी देता है तो आपको ऐसा आत्मविश्वास मिलेगा जो किसी दूसरी चीज़ से नहीं मिल सकता है।